असल अन्दर – नकल बाहर

ओम तत्सदात्मने नमः

वेदान्त का जो विषय है वह साधन को नहीं मानता है। वह थोड़ा सा–सीधा है, डाइरेक्ट। यह साधन, जो हम बताते हैं, यह योग, ज्ञान और भक्ति तीनों मिश्रित है। थोड़ा–थोड़ा सभी रहता है। विवेक भी बना रहता है, इक्सपीरियन्स भी होता है। अनुभव होता है, बुद्धि में समझ आती है, बोध होता है और अन्त में ज्ञान आ जाता है, अनुभवज्ञान। इसे योग या राजयोग की साधना कह सकते हैं। अध्यात्मयोग कह सकते हैं।

योग की प्रक्रिया, थोड़ा अच्छी मानी जाती है। इससे क्या होता है, कि जितनी शरीर में कुंडलिनियां हैं, वो सब जाग्रत होती हैं। उनसे ताकत मिलती है। और दूसरे अनुभूतियाँ मिलती हैं। योगी–काल करके बाधित नहीं हो सकता है, देश करके बाधित नहीं होता है। वह जानता है कि आगे क्या आने वाला है। कोई घटना आने वाली है। और जो वेदान्ती है, वह यह सब नहीं मानता है। इसलिए वह मार खा सकता है। तो ये कई बातें हैं– जो इसमें विशेषताएं हैं। इसलिए उस रास्ते में खतरे ज़्यादा हैं– शेर भी मिल जाते हैं, चीते भी मिलते हैं, भालू भी मिल जाते हैं, सर्प भी मिल जाते हैं, और डाकू मिल जाते हैं, और लूट लेते हैं। एक और रास्ते में कुछ सुविधाएं मिल जाती हैं–नदी मिल जाती है, मंदिर मिल जाता है–कुछ गांव मिल जाते हैं। ऐसे कुछ सुविधाएं हैं। एक और ज़्यादा चक्कर वाला रास्ता है। ऐसे ढंग से ये जो इंडिपेंडेंट महात्मा नहीं होते–ये जो आचार्य संत या सम्प्रदायी संत हैं, मजहबी लोग हैं, उन लोगों ने ये सब निर्मित कर लिये हैं। और जो इंडिपेंडेंट या स्वतंत्र संत होते हैं, वो सबको जोड़ कर चलते हैं। जैसे ये लोग ज्ञान को अलग और भक्ति को अलग मानते हैं। लेकिन नहीं, देखिये गोस्वामी जी कहते हैं–

ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

इनमें भेद नहीं है

पंथ जात सोहहिं मति धीरा।।
'ज्ञान भक्ति जनु धरे शरीरा।

ज्ञान मनु और भक्ति सतरूपा। ज्ञान को पति बना दिया, भक्ति को पत्नी बना दिया और पति-पत्नी एक ही होते हैं। एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं। इसलिए दोनों एक हैं।

अस विचार पंडित मोहि भजहीं।
पायहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं।।

जानकारी मिल गई, कि यह है भगवान। यह दीपक जल रहा है- इस जगह मुझे पहुँचना है। यह ज्ञान है। अब उसमें फोर्स के साथ लपट पड़े, छोड़े न। तो वह भक्ति है। जानकारी और गति दोनों मिलकर एक हो गए। इनमें कोई अन्तर नहीं है। तो अगर गुरु, महात्मा के मुंह से इसे कहलाना है, तो वे दोनों को एक में मर्ज (विलय) कर देंगे। जो अच्छे महात्मा होते हैं। और जो आचार्य पद्धति वाले होते हैं, शास्त्र ज्ञानी होते हैं, वाक्य निपुणता की पद्धति वाले होते हैं, वे यह झगड़ा खड़ा कर देते हैं कि ज्ञान-ज्ञान है। भक्ति, भक्ति है। वे सोचते हैं, कि हम ऐसी व्याख्या कर दें कि इनके दिमाग ही काम न करें-पब्लिक के। लोग सोचेंगे-कि यह बड़ा भारी विद्वान है। यह एक चीज़ के पचास-पचास अर्थ करता है। लेकिन साधक से ठीक उल्टा है-यह। साधक को पचास अर्थ के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए-एक अर्थ का आधा अर्थ करे, पाव करे, अर्थ वह अच्छा माना जायगा। और जो एक अर्थ के दस अर्थ करे। दस अर्थ के सौ अर्थ करे, वह कुछ करने के लिए नहीं अर्थ करता-वह पब्लिक को बहलाने के लिए, अश्लीलता के लिए, चतुरता दिखाने के लिए और जानकारी को जड़ने के लिए करता है। ईगो के लिए करता है। आजकल के व्यास ऐसे ही करते हैं। क्योंकि करना तो किसी को है नहीं। जिनकी समाज में वह व्यास बोलता है, उनको करना तो किसी को है नहीं। वो तो चलो भाई, बंबई में बड़े अच्छे कथा वाचक आए हुए हैं, चलो सुना जाय। लेकिन अपने जो रोज के धन्धे हैं, उन्हें छोड़ना नहीं है- कथा ज़रूर रोज सुनते हैं। लेकिन उसमें फर्क नहीं आ सकता।

जैसे एक सेठ थे बड़े। रोज कथा सुनने जाते थे। अपने नाती को दुकान तका कर जाता था। एक दिन ऐसा हुआ, कि जमींदार दुकान में आ गया। उनके यहाँ शादी थी, बहुत सामान खरीदना था। सेठ का पुराना ग्राहक था, लेन देन था। सेठ दुकान में नहीं था। नाती को डाँटा, जमींदार ने। जमींदार आदमी को ज़मीन की गर्मी रहती है। गर्मी में गर्मी, सर्दी में ठंड और वर्षा में भीगते रहने से इन लोगों के स्वभाव तेज तर्रार हो जाते हैं। बोला, ए लड़के! जा बुला सेठ को। लड़का दौड़ गया, सेठ से बताया-बब्बा बब्बा! कोई बहुत बड़ा ग्राहक आया है- दुकान में, उसे बहुत

सामान खरीदना है।' सेठ का नियम था, कि बिना कथा खतम हुए, बीच में उठता नहीं था। सेठ ने कथा सुनने वालों से पूछा–रोज तो पंडित जी इतनी देर कथा समाप्त कर देते थे, आज देर तक बढ़ाते जा रहे हैं। लड़के से कहा, जाओ कहना अभी आ रहे हैं। लड़का गया बोला–दो चार मिनट में आ रहे हैं–आप आइए बैठिए। जमींदार ने डांटा उसे–अरे उल्लू हो क्या? हमारे पास टाइम कहाँ है? जा, बुलाओ जल्दी। लड़का फिर भागा गया। तब तक कथा समाप्त हो रही थी, और पंडित बोल रहा था, कि कृष्ण के स्वरूप को इस तरह से अपने हृदय में धारण करना होता है– धारणा की बात, जो लड़के ने सुना–उसके चित्त में कृष्ण का रूप खड़ा हो गया। वैसा ही सांवला शरीर, पीताम्बर, वंशी सब–चित्त में छा गया। उत्तम अधिकारी था लड़का। उसको, सेठ घर चलने को कहे, तो उठाया न उठे। कहे कि कृष्ण जाने नहीं दे रहा। चारों तरफ कृष्ण ही दिखने लगा, उसे।

एक दिन दुकान में एक गाय, कुछ सामान खा रही थी। लड़का देख रहा था–उसे गाय में कृष्ण दिखाई पड़े। उसने गाय को हटाया नहीं। सेठ आया और चार डंडा लगाया गाय के। तो वह लड़का लुढ़क गया–उस डंडे की चोट, उसके पीठ पर थी। सेठ भौचक्का रह गया। लड़के में स्वरूप के प्रतिएकतानता आ चुकी थी। हर जगह कृष्ण दिखाई देने से, गाय में भी, अपने में भी। इसलिए डंडा पीठ पर लगा। सेठ ने कहा, यह ज्ञान तुम्हें कहां से मिला। तो लड़के ने कहा–कथा में उस दिन पंडित जी ने बताया था, कि हर जगह कृष्ण को देखना चाहिए। सेठ बोला, 'हट उल्लू कहीं का–हम पचास साल से कथा सुनते हैं रोज, और वहीं की वहीं झाड़ कर चले आते हैं–और ठाट से अपना काम करते हैं। और एक तू बेवकूफ, जो कल ही कथा सुना–आज ही डंडा खा गया। लड़का तो उत्तम अधिकारी था, निकल गया। भगवान का भक्त हो गया। तो ऐसे भी कथाकार होते हैं। और सुनने वाले भी ऐसे होते हैं। सत्संग का मतलब है कि हम करने में लग जायं, फिर पीछे मुडकर न देखें। आगे ही आगे बढ़ें।

ऐसे ही एक बहुत बड़ा समझदार आदमी, घोड़े पर बैठ कर चला जा रहा था–एक जगह कथा हो रही थी। उसमें, उसने जाते–जाते सुन लिया, कि अगर कोई पेड़ के नीचे खड़ा है, और ऊपर से उसकी झोली में सांप गिर पड़े, तो क्या वह देखेगा कि यह सांप काला है, कि गोरा है, कि गेंहुँआ है–कैसा है–उसे तो जल्दी–जल्दी फेंकेगा। ऐसे ही कोई जितना जल्दी त्याग कर देगा–एक शब्द, में, उतना जल्दी उसे ईश्वर की प्राप्ति होगी। तो घोड़ा कहीं बांध दिया, कपड़ा फाड़कर फेंक दिया और निकल पड़ा, कि अब हम त्याग करते हैं। घूमते–घामते, बारह चौदह साल में फिर उधर से निकल

पड़ा, तो फिर भी कथा हो रही थी। तो पता किया कि कथा कब से हो रही है–मालूम हुआ कि बहुत दिनों से हो रही है, और बीसों साल से श्रोता आकर, रोज सुनते हैं। उसने कहा मुझे तो शास्त्र का एक चपका (कोड़ा) लगा था, तो आज तक होश नहीं है। और वे कैसे लोग हैं, जो रोज कोड़े खाते हैं, और बैठे रहते हैं।

तो इस तरह से, जब हम ईश्वर का भजन करते हैं, और जब हमारे पास 10 पैसा फोर्स है, तो 90 पैसा माया का फोर्स होगा। और अगर हमारे पास भजन का 50 पैसा होगा, तो माया का 50 पैसा होगा और भजन वाले को 60 तक बढ़ा दें, तो इसकी ताकत बढ़ जायगी। माया कंट्रोल हो जायेगी। बस यही तो है–दो पलड़ा चलते हैं, इधर–उधर। यही तो उलटा–पुल्टी है। हाँ बस। अब जैसे हम 100 पैसे माया में फँसे हैं। एक पैसा भजन करने लगे, तो उधर माया में रह गये 99 पैसे। अब हमारा काम है, कि हम इस एक पैसे की रक्षा करें। यह जाने न पाए। और प्रयत्न में लगे रहें, कि एक पैसा और बढ़ जाये। अगर बढ़ गया तो दो पैसे हो गए। और उधर 98। फिर तीन हो गये, तो 97 इस तरह 96, 95, 94, 93, 92, 91 माया की उल्टी गिनती होने लगी। इस तरह से धीरे–धीरे 50 के ऊपर भजन को ले आना है। बस फिर कोई दिक्कत नहीं। किसी भी तरीके से हम करें, हजारों तरीके हैं। स्पीड पकड़ो, फोर्स लगाओ, तो जल्दी सफलता मिलेगी। धीमी गति में ऊपर से अटैक हो सकता है। स्पीड में उस पर तुम्हारा अटैक होगा, और जल्दी प्रगति होगी। विजातीय ताकत सजातीय में ट्रान्सफार्म होती जायेगी। भजन घ्यान सब आ जायगा।

कोई भी प्रसंग हो, कोई भी अंतःकरण में तर्क हो, कोई भी मन में अंदर शंका तैयार हो, उसका हल होना चाहिए। अगर साधक के अंतःकरण में तर्क तैयार हुआ और उसका समाधान नहीं होता, तो वह साधना नहीं कर सकता। एक शंका तैयार होगी–दूसरी होगी। अगर पहली का समाधान नहीं हो पाया, और उसको खतम नहीं कर पाया। तो दूसरी होगी, तीसरी होगी, चौथी होगी–इस तरह से टाल लग जायगा। तो फिर उसका अंतःकरण, पवित्र विचारों को पकड़ने में सक्षम नहीं होगा। वह भर जायेगा, तमाम प्रकार के तर्क–वितर्कों से। प्रश्न यह है कि इसकी एडजस्टिंग खोजनी चाहिए। मेरा अपना ध्येय यह है, कि गीता को तो हटा दें, रामायण को हटा दें। और अपने को आगे ले लें। तो जब आप साधना करेंगे तो आपके हृदय में ही यह क्रिया शुरू होती है। जिसमें अंतःकरण चार खंडों वाला है मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इसमें कोई चितंवन करता है, कोई निश्चय करता है कि यह सही यह गलत है। कोई चेतन का प्रतिबिम्ब प्रदान करता है। इस प्रकार अंतःकरण की क्रियाएं बाहर चालू होती हैं,

और जब उसकी क्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं तो फिर वह साधक नहीं होता, वह आम जनता वाला आदमी, आम आदमी होता है।

और जब शंकाएं और समाधान इच्छाएं और उनका शमन और उनकी पूर्तियां ये सब क्रियाएं जब अंतःकरण में ही होने लगती हैं तो फिर इनमें विवाद छिड़ जाता है। इनके गैंग बन जाते हैं– इनकी अभिव्यक्ति हो जाती है। और वो दो भागों में बंटकर तैयार हो जाती हैं। एक बुरी धारणा, और एक भली धारणा। एक ही परिवार है–इनका। ये दो भागों में बंट जाते हैं। एक जो है अज्ञान का प्रतीक बनकर बुरी धारणा का पक्ष लेकर धृतराष्ट्र बनता है। दूसरा जो है अच्छे विचारों को केन्द्रित करके, उसमें रुचि लेकर और, क्षमा का आशीर्वाद लेकर और सहन करने की क्षमता के साथ, पांडवों का एक दल तैयार होता है। ये दो तरह की प्रक्रियाएं हर मानव के अन्तःकरण में जाग्रत होती हैं। और ये दोनों प्रक्रियाएं, परस्पर एक दूसरे के प्रति विरोधी रहती हैं। हमेशा युद्धरत रहती हैं। हमेशा ऐक्शन–रिएक्शन होता रहता है। एक इसको मानेंगें, तो दूसरे कहेंगे हम इसको नहीं मानेंगे। एक इसको सही मानेंगे, तो दूसरे गलत मानेंगे। ये जो दो प्रकार के बन गये इनमें – एक को गुणों की पलटन और एक को अवगुणों की पल्टन कह सकते हैं। या सजातीय और विजातीय कहकर इन्हें पुकारते हैं। कोई तो इन्हें दैवी संपदा और आसुरी संपदा कहकर पुकारते हैं। कोई इन्हीं को विद्या क्षेत्र और अविद्या क्षेत्र कहता है। तो अब यह दो पल्टन बनकर तैयार हो गईं। अब उनमें खलबली मचती है। यह जो शान्ति है जीवात्मा में, वह शान्ति छिन जाती है। वो दबते चले जाते हैं, ये उभरते चले जाते हैं। एक के अंदर क्षमता तैयार हो जाती है, दूसरे के अंदर ईगो तैयार होता है। यह आटोमैटिक सिस्टम है। तो इस तरीके से वो पाण्डु पुत्र कहलाते हैं। ये धृतराष्ट्र पुत्र कहलाते हैं। ये दुर्गुणों के केन्द्र कहलाते हैं, वो सद्गुणों के केन्द्र कहलाते हैं।

तो अब क्या होता है, कि यह जो शरीर है, यही कारागृह है। और इसमें जो कर्म है, उसमें चेतन का प्रतिबिम्ब कंस है। कर्म बहुत प्रबल होता है। सबसे बलवान होता है। ‘‘कर्मणा गहनो गतिः’’ इसमें बड़ी ताकत होती है। जैसे बाली रामायण के कथानक में बलवान था। ऐसे ही यहां कंस है। शरीर से ही कर्म होता है। इस शरीर में जो व्यापक भाव ले रहा है जीवात्मा, वह वसुदेव है। साधक जो इसमें ध्यान लगाता है–वह देवकी है। इन दोनों के संयोग से ये जो शरीर कारागृह है, इसमें एक तीसरी चीज, चेतन का प्रतिबिम्ब तैयार होता है। कृष्ण। तो इस चेतन का लालन–पालन कहाँ होता है–यशोदा कहते हैं–भक्ति को। नन्द बाबा नियम है। तो जब हम नियम से रहने लगेंगे और भक्ति करने लगेंगे तब ईश्वरीय भाव बढ़ेगा। गो

नाम इंद्रियों को हमें चराना है। बस इन्हीं को हमें रोकना है। यही इंद्रियाँ कभी गाय बन जायेंगी। कभी गोपी बन जायेंगीं। जब स्थूल स्तर की साधना होगी, तो गाय बन जायेंगी। फिर सूक्ष्म में यही इंद्रियाँ गोपी बन जायगी। अनुकूल बन जायेंगी। उसके इशारे पर नाचेंगी। वाणी रूपीवंशी है। वाणीमें जब प्रभाव आ जाता है, तो सब आकर्षित हो जाते हैं। प्रभावित हो जाते हैं। यह सारी रचना रच जाती है। साधना करने से साधक के अन्तःकरण में। फिर आगे चलकर दिलरूपी द्वारका में पहुंच गये तो वहां प्रसंग आ गया दूसरा।

पांडवों को (सद्गुणों को) राज का अंश नहीं दिया जाएगा। सुई की नोंक के बराबर ज़मीन नहीं दी जायगी। इन्हें देश निकाला दे दिया जाएगा। छल से, झूठ से, बेईमानी से इन्हें पसंगा नहीं माना जायगा। ये सब (दुर्गुण) बड़े बलवान होते हैं, मोहरूपी दुर्योधन, दुर्बुद्धि दुश्शासन ऐसे बड़े-बड़े बलवान हैं उस तरफ। कर्म रूपी कर्ण है। भ्रम रूपी भीष्म पितामह हैं। द्वैत का आचरण रूपी द्रोणाचार्य हैं। इस तरह, से सब बड़े-बड़े योद्धा हैं। ये सत्यवादी हैं। समाज की दृष्टि से इनकी बड़ी आवश्यकता है। इस तरह से इनके प्रभाव से यह सब विजातीय बढ़ते चले जाते हैं। कि भाई, इनको तो कोई जीत ही नहीं सकता। इनकी तो कभी हानि नहीं हो सकती। आत्मा रूपी कृष्ण है-तो जब त्याग हो जाता है। सद्गुरु मिल जाते हैं। इष्टदेव कहो कुछ भी कहो। तो यह गाइड करता है। डाइरेक्ट भी करता है, इनडाइरेक्ट भी करता है। पहले से भी करता है और पीछे भी करेगा। वह लगा ही रहेगा। चाहे उसे जरासंध परेशान करे। चाहे उसे दिल रूपी द्वारिका में बसना पड़े। चाहे मन रूपी मथुरा को छोड़ना पड़े। कुछ भी करना पड़े लेकिन वह अपने काम पर रहेगा। तो इस तरीके से यह बराबर संघर्ष साधक के अंतःकरण में चलता है। नाम इसका है महाभारत। महा कहते हैं डिग्री को। भा कहते हैं ज्ञान को, रत कहते हैं, लगा रहने को। महान ज्ञान में जो लगा रहे। उसका नाम है। महाभारत। वहाँ ये ढाल, तलवार, वाण कुछ नहीं है। यह सब चित्त पट्ट तो यहीं हो रहा है अपने अन्दर। साधक वही हो सकता है, जो इसे देखे समझे।

जब हम साधना करेंगे और बलात् विघ्न हमारे सामने आएगा, तो उसको जब हम सहन करेंगे, तो वह वंदनीय त्याग होता है। और त्याग का जब सहारा लेंगे तो हम स्वाभाविक उठ जाएंगे। हाँ अगर हमें यह बुरा लग गया और उठ नहीं पाए और इनर्जी खतम कर दिये, तो फिर दूसरी बात बन जायगी। फिर वह साधना नहीं रह जायगी। साधना यह है कि हम उसमें लगे हैं, और कोई बलात् विघ्न आ गया, तो हम उसका बुरा नहीं मानते। हम मानते हैं, कि भगवान परीक्षा ले रहा है। कोई रोग

आ गया, तो हमें मानना चाहिए कि भगवान हमारी मदद कर रहे हैं। हमारी तपस्या से यह खतम नहीं हो रहा था, तो भगवान ने सोचा, कि इसको रोग दे दो–इसको भोग लेने से इसका पाप खतम हो जायगा। तो यह भगवान की बड़ी भारी आह्लादिनी–कृपा है। बड़ी भारी कृपा हुई है कि हमारा संकट थोड़े में निबटा दिया। कोई विघ्न या तकलीफ आए, तो हम उसे स्वीकार करें। उसका स्वागत करें, तो वह कष्ट–कष्ट नहीं होगा। हममें क्षमता आ जायगी और सहन करने की ताकत बढ़ जायगी। और वह वंदनीय त्याग कहलाएगा। जहाँ त्याग का सहारा हुआ, तो हम साधन में आगे बढ़ जाते हैं। आगे की भूमिका बन जाती है। इस तरह से साधक आगे बढ़ता जाता है।

तो वो सद्गुण रूपी पाण्डव, ऐश्वर्य स्वरूप श्रीकृष्ण के हाथों में शरीर रूपी रथ और इंद्रिय रूपी घोड़े और मन रूपी लगाम सौंप देते हैं। अर्जुन कहता है मैं आपका शिष्य हूँ। मैं इस समय कुछ नहीं सोचता। और न कोई निर्णय लेने के योग्य हूँ। मुझे परेशानी है, बस मैं आपको चाहता हूँ, मैं राज्य नहीं चाहता। मैं आपको चाहता हूँ, जब ऐसा ध्येय, दृढ़ निश्चय बन जाता है, तब कृष्ण अनुकूल हो जाते हैं–आत्माअनुकूल हो जाती है। तब कृष्ण कहते हैं, अब मैं तुम्हारा काम करूंगा। अब मैं तुम्हारा योग क्षेम सब संभालूंगा। तेरी रक्षा करूंगा। रक्षा करने में बड़ी दिक्कतें है। बड़ी–बड़ी पेचीदगी के मामले हैं। बड़ी–बड़ी शर्तें हैं। हर प्रकार से अर्जुन को मार देने में–कर्ण सक्षम था। उसके पास ऐसे–ऐसे युद्ध कौशल थे कि अर्जुन को मार सकता है, उससे भी बचाना है। फिर पितामह भीष्म से तो कोई बच ही नहीं सकता, उससे भी बचा लेना है। यह सब कला, गुरु जानता है–यह इष्टदेव जानता है। और बचा ले जाता है। अब इसको कैसे अपने में लाना है, यह सोचिए। जो हम तुमसे कह रहे थे, कि यह जो छा गया है,बाहर का नाटक, यह अंदर आ जाय। बाहर न रह जाय। यह दुनिया बदल जाय। हम कहते हैं, दुनिया उल्टी है। वह दुनिया अन्दर वाली आ जाय, तो सही हो जाय। वह दुनिया जब आ जायगी। तो उस दुनिया के दिन में, दिखाई पड़ेगा दूर तक, और कम्यूनिकेशन हो जाएगा–ईश्वर से। और इस दुनिया में, इसमें पर्दे लगे हुए हैं। हमारी पूरी इनर्जी, इनमें ढक जाती है। तो यह उल्टी है दुनिया। और जब अन्दर की हो जायेगी, तो सीधी हो जायगी।

तो अब प्रश्न आ गया। अब आ गया – गीता का मौका। अब यह संघर्ष रुक नहीं सकता। सजातीय –विजातीय दोनों खड़े हैं। अब ज़रूरत है गीता की। अब ज्ञान की ज़रूरत है। हर प्रकार का ज्ञान, बताया जाता है। क्या यह उचित है, तुम्हारे लिए। क्या यह सन्यास योग ठीक है ? द्वितीय अध्याय में बहुत बड़ा ज्ञान दिया है। और

सबसे ज़्यादा प्रीच (उपदेश) है उसमें। बहुत अच्छा लिखा गया है। करीब करीब सब अध्यायों में ज्ञान दिया गया है। थोड़ा भेद दे-दे करके-कहीं सन्यास योग है, कहीं कर्मयोग है, कहीं भक्ति है, कहीं ज्ञान का ही है, कहीं निष्काम कर्म योग है, कहीं विद्या अविद्या का है। हर चीज़ को ले लिया गया है। कोई रह न जाय। और अगर एक भी गुण आ जाय, तो सभी गुण आ जाएंगे- यह आध्यात्मिक विषय ऐसा है। अगर तुम वैराग्य को ले लो, तो ज्ञान आ जायगा, विवेक आ जायगा, धर्म आ जायगा, सब आ जाएंगे। या धर्म को ले लो, तो सब आ जाएंगे। त्याग को ले लो, तो सब आ जाएंगे। अनुराग को ले लो, तो सब आ जाएंगे। और अगर तुम दुर्गुणों में एक को ले लो तो सब आ जाएंगे। मोह भी आ जायगा, लोभ क्रोध सभी आ जाएंगे। जितने दुर्गुण हैं, सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

सबसे बड़ी चीज़ है, कि क्यों गीता की आवश्यकता है? गीता जो है, गाने से बना है। भगवान ने इसे गीत रूप में कहा है। पोएट्री रूप में कहा। इस तरीके से, उसका नाम गीता कहा गया। गीत के जैसे। और अध्यात्म में भी कहते हैं-ग नाम इंद्रियों का, ता माने त्याग। इनसे अलग हो जाना। जो इंद्रियों का समूह है-इस, पूरे का त्याग कर देना। वही सब इसके अंदर भरा हुआ है। (गीता में) बताया गया है कि तुम जितेन्द्रिय बनो। काम का त्याग करो, तुम क्रोध का त्याग करो, मोह का त्याग करो। तुम इन दुष्टों को मारो। ये आततायी खड़े हैं, इन्हें तुम मारो।

इनको मारो-तब मैं आ जाऊँगा। कोई तुम्हारा, दुश्मन नहीं रह जायगा। तुम्हें आनन्द ही आनन्द मिल जाएगा। तुमको यह परमानन्द मिल नहीं सकता, जब तक मैं नहीं हूँ। और तुम जो उसको खोज रहे हो-काका, दादा में मिल जाय, राज में मिल जाय, ज़मीन में मिल जाय, तो इनमें नहीं मिलने वाला। जब बार-बार कृष्ण ने समझाया और कहा कि मन की गति को रोको, तो वह कहता है- यह मन हवा से भी ज़्यादा वेग वाला है। यह कैसे रुक सकता है-यह मेरी ताकत के बाहर की चीज़ है। तो अब इसकेबाद कृष्ण कहेगा क्या? क्या फिर से वही सब बताएगा कि काम का त्याग करो, मोह का त्याग करो? अब तो उसे दूसरी कला बतानी पड़ेगी। जब हर एक साधन में अपनी असमर्थता जाहिर करता है अर्जुन-यह साधक। तो फिर आखिर में बताते हैं कि, तुम 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। 'सारी जो धारणाएं बन गई हैं-मन में, इन्हें हटा दो और मेरी शरण में हो जाओ। इन धाराणाओं को त्यागो-इन्हें हटाओ मन से। फिर मैं तेरे योगक्षेम का वहन करूँगा। और मैं सब कुछ करूँगा। आखिर में इतना ही आता है। तो जब यह हो गया, कि सब कुछ समर्पण कर दो और मेरी शरण हो जाओ। मन को समर्पणकर दो, शरीर

को कर दो, फिर तुम्हें कुछ करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। तो जब ऐसा हो गया, तो युद्ध छिड़ गया। गीता तो बीच में खड़े होकर बताया था। दस मिनट की बात। और अगर वहाँ दिन भर खड़ा रहकर होती, तो वहां कोई खड़ा रहने की जगह तो थी नहीं। वह तो बस थोड़ी देर की बात है, अन्तःकरण की बात है, समझ की बात है। तो जैसे ले गए। देखा दोनों तरफ के लोगों को। पूज्यों को प्रणाम किये, और कहे–बस चलो। क्षमावान के यही लक्षण हैं, दुर्योधन ने किसी को नहीं किया प्रणाम। और उनकी तरफ–जो ये पितामह वगैरह थे, उनको भी नहीं किया। तो सद्गुण, क्षमा की ओर होते हैं।

पांडव लोग युद्ध में जाते, तो पितामह को प्रणाम कर लेते। उधर से विजयी भव–आशीर्वाद मिल जाता। जब युद्ध में पितामह भीष्म ने आफत कर दिया। दस हजार जवानों को रोज मारता था। कृष्ण परेशान हो गए। तो पाण्डवों को बैठाए, बोले धर्मराज! तुम तो पितामह को प्रणाम करने गए थे न? बोले हाँ। तो कृष्ण ने कहा तो हमारी बात मानो। तुम आज जाओ पितामह के पास, और उनसे कहो कि यह 'विजयी भव' का अपना आशीर्वाद वापस ले लीजिए–हमको नहीं चाहिए। गये, प्रणाम किये। बोले कैसे आए? तो कहे, कुछ नहीं–प्रणाम करने आए थे। अच्छा, 'विजयी भव। तो युधिष्ठिर ने कहा, पितामह आप अब यह आशीर्वाद न दीजिए। यह हमें न चाहिए। आप अपना आशीर्वाद वापस ले लीजिए। तो भीष्म ने कहा क्या बात है? क्या रहस्य है इसमें? बोले, मैं भीष्म–अपना आशीर्वाद वापस ले लूं, यह नहीं हो सकता। तो धर्मराज ने कहा, पितामह! आपके रहते, युद्ध में हमें जीतना तो है नहीं। तो फिर आपका यह आशीर्वाद झूठा हो जायेगा। आपको अपयश न मिले, आपकी वाणी झूठी न हो जाय, इसलिए इसे वापस ले लीजिए। हम हार जाएं, यह हमें मंजूर है, लेकिन आपकी वाणी झूठी हो–यह उचित नहीं है। पितामह ने कहा–अरे बदमाशो, मैं समझ गया। यह कला तुम्हें श्रीकृष्ण ने बतायी है। और बस हो गया। तो ये जो भ्रम है, यह पितामह भीष्म है। यह बड़ा बलवान होता है। भ्रम नहीं जाता। यह सही का गलत और गलत का सही–यह भ्रम नहीं जाता। यह बहुत खराब बीमारी है। तो यह युक्ति से मरेगा। उल्टी युक्ति से मरता है।

इसी तरह रामायण में भी है। जैसे, यह रावण क्या है? 'मोह दसमौलि। विनय पत्रिका में मोह को रावण कहा है। यह मेरा है, वह मेरा है। यह कोट भी मेरा है, वह भी मेरा है–ऐसा जो मोह है, वह रावण है। ये हाथ चाहते हैं–स्पर्श मिले, नेत्र चाहते हैं–देखने को मिले, यह जिह्वा भी रस चाहती है। इस तरह से दसो इंद्रियां अपने विषयों का भोग चाहती हैं–समूह में। ये दस सिर हो गये। इंद्रियों में जो दोहरी

कार्य क्षमता है। ये बीस भुजाएं हैं। यह मोह रूपी रावण है। 'मोह सकल ब्याधिन कर मूला।' छोटा मोटा नहीं–यह राजा है बुराइयों की जड है। तो इससे लड़ना, इसको वशीभूत कर लेना, यह बहुत बड़ी बातहै। कैलाश को उठाने वाला रावण–विश्व विजयी। कैलाश कहते हैं, काया को। मोह ने काया को जीत लिया है। काया में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब, कैलाशपति शंकर का है। तो इस तरीके से ये रूपक गढ़े हैं। अब अहंकार को बताया–अहिरावण। कहते हैं, पाताल में रहता है। पाताल लोक उसकी
राजधानी है। जो अभिमानी होता है, उसका सिर नीचा। यह पाताल है। ऐसे इनको गढ़ा गया है।

फिर गोस्वामी जी ने स्वयं अपनी कविता में लिखा है।–''वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका''–यह शरीर ब्रह्मांड है। इसमें आसक्ति रूपी लंका है। 'मन मय दनुज रूप धारी।' मन रूपी मय दानव ने इसकी रचना किया है। इसी में ये सब काम–क्रोध, मोह बैठे हुए हैं। इसमें जो जीवरूपी विभीषण है–वह परेशान हो रहा है। यह बहुत बड़ा भजन है–विनय पत्रिका में। इस तरीके से, ये अनुभव की बातें हैं। अनुभव नहीं कर पायेगा, तो साधन करने वाले का कोई मतलब नहीं है। बाहरी रचना को ही अगर लेना है तो फिर साधना करके तुम करोगे क्या? इसे ट्रान्सफार्म करना पड़ेगा। इसमें उसे लाना पड़ेगा, जो दूसरी दुनिया है असली अन्दर वाली। और इसको खतम करना पड़ेगा। तब तुम्हारी साधना मानी जायगी। और जब यहीं बने रहोगे, तो तुम साधना काहे की करोगे? वह साधना नहीं मानी जायेगी।

वही इच्छा, वही स्वभाव, वही गुण, वही कर्म। और कहा गया है कि– ''गुण, स्वभाव त्यागे बिना, दुर्लभ परमानंद।'' गुण–स्वभाव को त्यागना पड़ेगा। तब कहीं परमानंद मिलता है–आनंद मिलता है। इस तरीके से यह सब आध्यात्मिक तौर तरीका है। इसे हमें समझना पड़ेगा। और इसमें ऐसा है, कि जो तुम्हारे सामने–कविता या कहानी आ जाय, तुम उसके अन्दर प्रवेश कर जाओ। जो जानकारी तुम्हारे सामने आ जाये, तुम उसके अन्दर पहुंच जाओ। उसे लेकर अन्तःकरण में प्रवेश कर जाओ। तब तुम ठीक हो। जो जानकारी तुम्हारे पास आ जाय,उसे अपने अनुसंधान में ले लो। सिद्धान्त बन जाय। उसको दर्शन कहते हैं–उसको फिलासफी कहते हैं। ऐसे ढंग से चलना चाहिए। और जब तुम्हारा सिद्धान्त अपना है, और यह बौद्ध का अलग है, यह जैन का अलग है, कन्फ्यूशियस का अलग है। यह मोहम्मद का अलग है, ताओ का अलग है–तब फिर क्या फायदा हुआ? तो फिर कितने भगवान हो गये? और जब इतने भगवान हो गए, तो फिर तुम कहीं के रहे नहीं। वहीं रहे, जहाँ थे। नौ दिन

चलै अढ़ाई कोस–कोई मतलब नहीं निकला। इसलिए सबमें प्रवेश करना पड़ेगा। सबमें एक चीज़ देखना चाहिए। सबको अपने सिद्धान्त में समाहित करने की शिफत आनी चाहिए–तब सही माना जायगा। अब देखो लिखा है कि

''कलियुग सम युग आन नहिं, जो नरकर विश्वास।
गाइ राम गुनगन विमल, भवतर बिनहिं प्रयास।''

कलियुग सबसे अच्छा युग है। क्यों है? क्योंकि कलियुग में बहुत ज़्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। सतयुग में, जब सबके अंदर सतोगुणी भावना ही व्याप्त हो जाती है। जब समूह में सद्भावना का एक लेबल बन गया, आम जनता का स्तर बन गया, रहनी बन गई, एक स्वभाव बन गया, तो ईश्वर की प्राप्ति बहुत गहरी हो जायेगी। अब जैसे कपट कलियुग का स्वभाव बन गया है– बेइमानी में रचे–बसे हैं। और फिर साधना करनी है, तो हमें दूर जाना पड़ेगा। कहां जाना पड़ेगा–सत्य के पास। सत्य उसे कहते हैं, जो तीनों कालों में अबाधित है–एकरस है। कालकरके जो बाधित नहीं है। तो वह जब हमें मिले, तब हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो। और अगर सत्य आ गया हो, जैसे आज कपट आ गया है। तो फिर अब कहां प्राप्ति होगी? तब फिर योगियों को जो प्राप्ति होती है, वह बहुत गंभीर होती है। फिर एक–एक लाख साल तपस्या करते थे। हड्डी में प्राण रह जाते थे। बांबी में आदमी दब जाता था। अब नहीं। अब कपट, मैथड बन गया है। अब तो–'गाय राम गुन गन विमल, भवतर बिनहिं प्रयास।' थोड़ी सी मेहनत कर दे, तो, खट निकल जायगा। इसलिए–''कलियुग समयुग आन नहि जो नर कर विश्वास। गाइ राम गुनगन विमल भवतर बिनहिं प्रयास।'' इसलिए कलियुग सबसे ठीक है। जहाँ कपट ही कपट भरा है, तो थोड़ा सा सत्य काम कर जायगा। और जब सब के पास सत्य भरा पड़ा है, तो कितना बड़ा सत्य होगा तब जाकर पहुंचेगा। तो वह सत्य बड़ा कठिन है। इसलिए–

'कृत युग सब जोगी विज्ञानी।
करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।
त्रेता विविध जग्य नर करहीं।
हरिहिं समर्पि करम भव तरहीं।।
द्वापर करि हरि गुरु पद पूजा।
नर भव तरहिं उपाय न दूजा।।
कलियुग केवल हरिगुन गाहा।

गावत नर पावहिं भव थाहा।''

अब सरल से सरल हो गया। क्यों हो गया? क्योंकि

कलि कर एक पुनीत प्रतापा।

मानस पुण्य होहिं नहिं पापा।।

इस तरह से गोस्वामी जी के पास यह जो मानस की कुंजी है,यही सब रहस्य खोलती है। इसलिए-

''कलियुग समयुग आन नहिं।''

ऐसी बीमारी आ जाय, कि ईश्वर को कोई न माने-आगे वह समय आने वाला है- तो झट बदलाव आ जायगा। फिर यह जो कपट है, यह नाइन्टी फाइब परसेंट पर पहुँच जायगा और सत्य, फाइब परसेंट रह जाएगा। जब 95 प्रतिशत हो गया कपट, तो उसमें ईगो आ जायगा। तो उसका रियेक्शन होगा। जो 5 प्रतिशत वाला है, वह बढ़ने लगेगा-और 95 प्रतिशत वाला कपट घटने लगेगा। वह 5 से 10 प्रतिशत हुआ, वह 90 प्रतिशत रह गया। फिर यह 20 प्रतिशत हुआ, वह 80 प्रतिशत रह गया। ऐसे बहुत समय में 50 हजार साल में, लाखों साल में युग बदलते हैं। धीरे-धीरे युगों का परिवर्तन होता है। युगों की उम्र बहुत लम्बी होती है। धीरे-धीरे बदलते-बदलते इसको सुसज्जित कर देगा-आत्मिक धर्म को। और जब धर्म बढ़ जायगा। सद्भावना समाज में बढ़ जायगी और बढ़ते बढ़ते बढ़ते जब 95 प्रतिशत हो गया, तोफिर इसमें ईगो तैयार होगा। अहंकार तैयार होगा। तो फिर इसके अपोजिट धर्म, बेइमानी बढ़ने लगेगी। और यह धर्म तहस नहस हो जायगा। लेकिन लाख-पचास हजार साल, उम्र है इसकी ऐसे बदलता रहता है। जैसे दिन और रात। हंसी और रुलाई। दुख और सुख। एक लम्बे समय में, ये बदलते हैं-इनको युग कहते हैं। इस तरह से सतयुग में बड़ी भारी तपस्या करते थे हजारों-लाखों साल तक। शंकर जी की समाधि लग गई, सत्तासी हजार साल तक। बीते संवत सहस सतासी। यह बात अब नहीं है। 10 साल करले 12 साल करले बहुत है। हम कम समय के लिये करें, तो भी प्रगति होती है। यह युगों का प्रभाव ऐसा होता है। यह कलियुग का समय साधक के पक्ष में है कि अगर थोड़ा भी अभ्यास बन जाय, तो लाभ हो सकता है। जो लाभ पहले 10 हजार साल की तपस्या से होता था, आज थोड़े दिनों में हो सकता है। यह तो समष्टिगत संसार में युगों की बात हुई। हर व्यक्ति के अन्तःकरण में भी इन युगों का परिवर्तन होता रहता है। वही असल है।

''नित जुग धर्म होंहिसबकेरे।

हृदय राममाया के प्रेरे।।''

सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।।

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब विधि सुख त्रेता कर धर्मा।।

बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस ।।

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।।

मन में सतोगुण विशेष होने पर हमारे अन्दर की दुनिया में सतयुग होता है। कुछ थोड़ा रजोगुण आ जाता हे तो त्रेता युग हो जाता हैं। रजोगुण और कुछ तमोगुण का असर मन में रहे तो द्वापर, और जब तमो गुण का प्रभाव बढ़ जाता है मन में, तो कलियुग कहा जायेगा। इन गुणों के अनुसार ही लोगों की अच्छे–बुरे कर्मों में प्रवृत्ति होती है। लेकिन निवृत्ति मार्ग वाला साधक तीनों गुणों से परे जाकर निर्लेप स्थिति के लिए साधना करता है।

गुणों का प्रभाव हर घडी मन के अन्दर कम ज्यादा होता रहता है। तो यह हर व्यक्ति के अन्दर की बात है। बाहर दुनिया में क्या क्या होता है, वह साधक का विषय नहीं है। अपने में ही देखना है। यह असल है, बाहर सब नकल है। इसलिए वहां लिख दिया है कि,

'बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।।'

बुद्धिमानी इसमें है कि अपने अन्दर देखे और सही रास्ता पकड़े। राम लीला में जैसे राम लक्ष्मण बना देते हैं लड़कों को, सीता बना देते हैं। तो फिर क्या वो बने ही रहते हैं राम, लक्ष्मण, सीता? राम लीला करके, फिर वही लड़के। जैसे गांवों में छोटी छोटी लड़कियाँ होती हैं, तो माई दाइयों से सीख लेती हैं और फिर गुड्डा–गुड़िया बना लेती हैं। खेल खेल में उनकी शादी रचाती हैं। बारात गाना–बजाना, भांवर फेरा, खाना–पीना सब करती हैं। और फिर दो चार दस साल में जब बड़ी हो जाती हैं। उनकी शादी हो जाती है। ससुराल चली जाती हैं। तो फिर गुड्डा गुड़ियों का ख्याल भी नहीं आता। अब असलीगुड्डा से भेंट हो गई। तो ऐसे ही यह दुनिया है नकल। लेकिन नकल को लेना पडता है, असल को पाने के लिए। और जब असल से भेंट हो जाती है, तो नकल छूट जाता है। और अगर असल में नहीं जाएंगे, नकल को ही पकड़े रहेंगे, तो उनसे काम नहीं चलेगा। गुड्डा–गुड्डी से, लड़का–लड़की पैदा नहीं होंगे। बिना असल के सृष्टि कैसे चलेगी? कैसे काम चलेगा?

इस तरीके से नकली नाटक से, असली जो अपने अन्दर की कहानी है–उसे लेना चाहिए।

अक्षय कहते हैं इच्छा को। यह कभी मरती नहीं है। आज हमारे अन्दर है कल तुम्हारे अन्दर होगी। इस तरह से यह अक्षय है। समाप्त नहीं होती, यह अजर अमर है। यह अक्षय कुमार (मोह रावण) का लड़का था। रावण कोई व्यक्ति नहीं। रावण कहते हैं, मोह को। रोना शब्द से रावण बना है। किसके लिए रोता है? पैसा के लिए, हाय पैसा, हाय पैसा। धन बढ़ जाय, मकान हो जाय, यह हो जाय, वह जो जाय। लड़का–मेरा, बाप मेरा, लाठी मेरी, मकान मेरा। मोह कहता है, मेरा–मेरा–मेरा। प्रेम कहता है तेरा–तेरा–तेरा। दोनों अलग–अलग हो गए। प्रेमाभक्ति जिसको है, वह कहता है, हे भगवान! यह सब आपका है। तेरा सब कुछ है–मेरा कुछ नहीं है। और जब मोह का साम्राज्य हो जाता है, तो कहता है–सब मेरा है। यह दुर्योधन मोह का रूप है। अर्जुन प्रेम का रूप है। भक्ति जब आ जाती है, तो वह कहता है, सब तेरा है– जो भी है वह तेरा है। जो भी मिलता है उसे वह भगवान का मानकर लेता है। तो फिर भगवान उसे चाबी सौंप देते हैं, कि लो, जो तुम करोगे ठीक है।

और जो कहता है– सब मेरा है, तो भगवान दूर हट जाते हैं। कहते हैं, यह तो अपने भरोसे है–अपना खुद कर लेगा। जैसे छोटे–छोटे बच्चे होते हैं, तो माता–पिता उन्हें गोदी में लिए रहते हैं। पालते रहते हैं। फिर कुछ बड़ा होता है, बैठने लगता है, फिर चलने लगता है। सीढ़ी से उतरने – चढ़ने लगा। तो माता–पिता खूब खुश होते हैं। कहते हैं आज बबुआ सीढ़ी से उतर गया। खूब खुशी होती है। तो अब वह लड़का अपने भरोसे होने लगा–तो माता–पिता की जिम्मेदारी कम होने लगी। पहले पूरी उन्हीं की जिम्मेदारी थी। तब वह लड़का भक्त के समान था, जब नहीं चल पाता था। अब हो गया ज्ञानी, जब सब जानने समझने लगा, संसार की बातें। तो संसारोन्मुख हो गया–अपने आप अपना सब करने लगा। तो फिर माता–पिता उसको उसी के भरोसे छोड़ देते हैं। उससे मतलब नहीं रखते। जब छोड़ देते हैं, तो फिर भर–भटाते हैं। पड़े रह जाते हैं–

पड़े के पड़े रह गए,

खड़े के खड़े रह गए,

मरे के मरे रह गए,

इसलिए यह बड़ी भारी बीमारी है। मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है, सो तोर– यह जो धारणा है, यह बड़ी उत्तम धारणा है। हमारा कुछ नहीं। देखिए, कृष्ण भगवान

के प्रयत्न के बाद भी जब युद्ध नहीं रोका जा सका। एक ही परिवार के दो भाइयों के लड़कों में युद्ध हुआ। जब नहीं माने तो कृष्ण ने सोचा, अब होना ही है तो हो जाने दो। बुलाया अर्जुन को भीम को–कि भाई अब तुम ऐसा करो, कि युद्ध ही कर डालो। दुनिया में है क्या–पैदा होना, मरना–यही तो है। तो अब युद्ध करो। तो इसमें मुझे भी शामिलहोना पड़ेगा। एक ओर मैं रहूँगा, और एक ओर मेरी सेना रहेगी। क्योंकि तुम दोनों मेरे भाई हो।

एक दिन गया दुर्योधन कृष्ण के यहाँ, वह सो रहे थे। जाकर उनके सिरहाने बैठ गया–सोचा अहीर ही तो है। उसके पीछे अर्जुन गया। वह नीचे पैताने बैठा–दोनों सहायता मांगने ही गए थे। दुर्योधन अभिमानी था, इसलिए सिरहाने बैठा। अहंकार था इसमें। सोचा, इस कृष्ण के पैताने मैं कैसे बैठू? अरे! मैं असली क्षत्रिय हूँ, यह ग्वाला तो नकली क्षत्रिय बना है। कहते हैं–भगवान है। अगर भगवान ही होगा, तो क्या कर लेगा? तो जैसे ही अर्जुन बैठा था, कि श्रीकृष्ण जगे, और सामने अर्जुन को देखा, बोले–आ गए अर्जुन! हां तो, बोलो भाई, तुम क्या मांगते हो? तो दुर्योधन बोला, अरे! तुम दोनों बेइमान हो। मैं पहले से आया हूँ, पहले अधिकार मेरा है। श्रीकृष्ण ने कहा–हॉ भाई, तुम पहले आए, तो अवश्य तुम से पूछना पड़ेगा। हां, हां बताओ, क्या मांगते हो–मेरी सेना को, अथवा मुझको? दुर्योधन ने कहा मुझे सेना चाहिए। तुम्हें लेकर वहॉ रणभूमि में नचाना तो है नहीं। मुझे तो युद्ध करना है। मुझे सेना चाहिए। कृष्ण ने उसे हाँ कर दिया। अब अर्जुन से पूछा। बोला भगवान! हमें तो लड़ना है नहीं। थोड़े दिन का जीवन है–भिक्षा का अन्न खाकर व्यतीत कर लेंगे। राज्य लेकर क्या करेंगे? हम तो आपको ही चाहते हैं'– भगवान का भजन करना चाहते हैं। हमें भगवान चाहिए। उसी को पाने की युक्ति बताइए– बस और मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। सेना में क्या रखा है? जितनी कलाएं हैं, वह तो यहीं हैं, कृष्ण के पास।

तो फिर बस हो गया। पितामह भीष्म तो है भ्रम। भ्रम का निवारण तो एक क्षण में कर देगा कृष्ण। यह कला तो उसके पास है। सेना से क्या होगा। देखो, जब महाभारत हो रहा था तो भीष्म अद्वितीय योद्धा था, दस हजार लोगों को युद्ध में रोज मारता था। कोई उसे जीत नहीं पाया। तो पांडवों ने सोचा अब क्या करें? उनको तो कृष्ण का आश्रय था। जब दस रोज हो गए–तो कृष्ण ने एक दिन पूछा युधिष्ठिर से, कि भाई आपकी सेना तो समाप्त होने को आ गई है, युद्ध कैसे जीतोगे? तो अब कोई कुछ न बोले। कृष्ण बोले, आखिर यह युद्ध, थोड़े से बचे सैनिकों के भरोसे तो जीता नहीं जा सकेगा? तुमने किसके भरोसे यह युद्ध रच

दिया? कहाँ गई ताकत? तो बोले, पितामह भीष्म के सामने कोई उपाय नहीं काम कर पा रहा है। तो भाई यह साधना भी युद्ध ही है। इसमें मरना पड़ेगा, जीव लगाना पड़ेगा, गर्दन देना होगा। अगर ऐसा नहीं कर सकते, तो किसके मत्थे भजन करना चाहते हो? भजन ऐसे थोड़े ही है। साधना अगर करनी है, तो समर्पण करना पड़ेगा। जो कहा जायगा वह करना पड़ेगा। गुरु का कहना करना है, गाइड का कहना करना है, तब जाकर काम चलेगा। तो समर्पण तो था ही उनका। तो फिर कृष्ण ने जो कहा, वही किया पाण्डवों ने। और भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य, जयद्रथ सबके सब कृष्ण की युक्ति से ही मारे गये। एक तरह से युद्ध तो कृष्ण ने ही जीता। ये सब अर्जुन वगैरह तो निमित्त मात्र थे। इस तरह उसी की ताकत से यह साधनारूपी महाभारत जीता जाता है। गाइड जानता है सब कुछ, वही करायेगा। तो इस तरह से इसमें, ऐसी-ऐसी इमेंसीपेशन (आतंरिकयुक्ति) घुसी पड़ी हैं। ये सब जब हम साधना करते हैं, तो हमारे अन्दर मिलती जाती हैं। भीष्म कोई व्यक्ति नहीं है। भ्रम ही भीष्म है, द्वैत का आचरण, द्रोणाचार्य है। मोह दुर्योधन है, दुर्बुद्धि दुशासन है। यह महाभारत है। यह तो साधक के अन्दर, अनवरत चल रहा है, ऐसे इसको लेना पड़ेगा। और डटना पडेगा इसमें। अब तो,

'सिर फूटे चाहे माथा, म्हाने तो हामी भर दई पंडित जी!'

अब चाहे सिर फूटे चाहे माथा, मैंने तो भगवान के भजन के लिए हामी भर दी-स्वीकार कर लिया है। अब हम हटेंगे नहीं। जो साधक ऐसे दृढ़ता से चल पड़ता है, तो मंजिल सरल हो जाती है। बुराइयाँ धीमी पड़ जाती हैं-उधर हड़कम्प (हलचल) मच जाता है। माया त्राहि-त्राहि करने लगती है। और जो कच्चा है, कमजोर मन का है, हिम्मत नहीं बांधता, बेईमान होता है-उसके लिए यह चढ़ाई और कठिन बन जाती है। चढ़ नहीं पाता, साधनारूपी चढ़ाई के ऊपर।

हरिः ओम